समयसार, १५६ गाथा पूरी हुई। १५७ (गाथा), इसका उपोद्घात।

अब पहले कर्म.. जो शुभ-अशुभभाव, मिथ्यात्वभाव वह **मोक्ष के कारणों का..** आच्छादन करनेवाला है। शुभ-अशुभभाव, वह मेरा है-ऐसा मिथ्यात्वभाव और स्वरूप का अज्ञान तथा अचारित्र, यह स्वरूप को आच्छादन करनेवाला है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान -चारित्र ऐसा जो स्वरूप, उसे नहीं प्रगट करने देकर, आच्छादन करनेवाला है, यह कहते हैं। गाथा

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मल-मेलणासत्तो।
मिच्छत्त-मलोच्छण्णं तह सम्मत्तं खु णादव्वं।।१५७।।

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मल-मेलणासत्तो।
अण्णाण-मलोच्छण्णं तह णाणं होदि णादव्वं।।१५८।।

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मल-मेलणासत्तो।
कसाय-मलोच्छण्णं तह चारित्तं पि णादव्वं।।१५९।।

हरिगीत

मलमिलनलिप्त जु नाश पावे, श्वेतपन ज्यों वस्त्र का।
मिथ्यात्वमल के लेप से, सम्यक्त त्यों ही जानना।।१५७।।

मलमिलनलिप्त जु नाश पावे, श्वेतपन ज्यों वस्त्र का।
अज्ञानमल के लेप से, सद्ज्ञान त्यों ही जानना।।१५८।।

मलमिलनलिप्त जु नाश पावे, श्वेतपन ज्यों वस्त्र का।
चारित्र पावे नाश लिप्त कषाय मल से जानना।।१५९।।

टीका : ज्ञान का सम्यक्त्व.. आहाहा! भगवान शुद्ध चैतन्यस्वरूप प्रभु का सम्यक्त्व। उसका ज्ञान होकर उसकी स्वसंवेदन में प्रतीति होना, उसका जो ज्ञान का सम्यक्त्व। ज्ञान का सम्यक्त्व अर्थात् आत्मा का सम्यक्त्व। **जो कि मोक्ष का कारणरूप स्वभाव है..** सम्यक्त्व जो आत्मा का सम्यक्त्व, वह मोक्ष के कारणरूप स्वभाव है। आहाहा!

वह **परभावस्वरूप मिथ्यात्व नामक कर्मरूपी मैल..** मिथ्यात्व मैल है। विपरीत मान्यता, वही मूल तो मैल है। वह मिथ्यात्व नाम का कर्म अर्थात् विपरीत भाव, वह मैल है। उसके **द्वारा व्याप्त होने से,..** विपरीत मान्यता के भाव से समकित का ढँक जाना। आहाहा! व्याप्त, **मैल के द्वारा व्याप्त होने से,..** (होने से) **तिरोभूत हो जाता है..** अर्थात् सम्यग्दर्शन को ढँक देता है। सम्यग्दर्शन होने नहीं देता। आहाहा!

जैसे परभावस्वरूप मैल से व्याप्त हुआ श्वेत वस्त्र का स्वभावभूत श्वेतस्वभाव तिरोभूत हो जाता है। परभावस्वरूप मैल से वस्त्र की सफेदी ढँक जाती है। आहाहा! उसी प्रकार आत्मा का सम्यग्दर्शन, मिथ्यात्व के भाव से ढँक जाता है। आहाहा! आच्छादन हो जाता है। कर्म तो निमित्त से है। वास्तव में तो वह भाव-मिथ्यात्वभाव, श्वेत वस्त्र को जैसे श्वेतपना मैल से ढँक जाता है, उसी प्रकार भगवान आत्मा का सम्यक्त्व, वह मिथ्यात्वभाव से ढँक जाता है अर्थात् होता नहीं है। आहाहा!

उसी प्रकार.. अब दूसरा। वह जैसे परभावस्वरूप मैल से व्याप्त हुआ श्वेत वस्त्र का स्वभावभूत श्वेतस्वभाव तिरोभूत होता है उसी प्रकार। उसी प्रकार आत्मा का सम्यक्त्व, मिथ्यात्व की विपरीत मान्यता के मैल से ढँक जाता है, आच्छादन हो जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : मैल आता है कहाँ से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मैल स्वयं करता है। आवे कहाँ से ? स्वयं मिथ्यात्व मैल करता है, (उस) मैल से ढँक जाता है, ऐसा कहते हैं। जो सम्यक्त्व करना चाहिए, (उसे) न करके, विपरीत मान्यता के मैल से वह सम्यक्त्व आच्छादन हो जाता है अर्थात् उत्पन्न नहीं होता। पश्चात् बन्ध का कारण लेंगे और पश्चात् लेंगे, वह मोक्ष के कारण (रूप) सम्यक्भाव से विरुद्ध भाव है। इसके पश्चात् तीन गाथा में लेंगे।

यहाँ तो तीन प्रकार (लेते हैं)। पहला यह कि जैसे श्वेत को मैल ढँक देता है, उसी प्रकार भगवान आत्मा के सम्यक्त्व को मिथ्यात्वभाव ढँक देता है। तीसरे में ऐसा आयेगा... दूसरे में बन्धस्वरूप आयेगा (और) तीसरे में ऐसा आयेगा कि जो सम्यक्त्व कारण है, उससे वह विरुद्ध भाव है। मिथ्यात्व है, वह विरुद्ध भाव है। यहाँ कहते हैं कि मिथ्यात्व है, उससे सम्यक्त्व ढँक जाता है, आच्छादन हो जाता है। वस्त्र का श्वेतपना मैल से (ढँक जाता है)। (उसमें कोई पूछता है कि) मैल आया कहाँ से ? कि मैल है, वस्त्र में मैल है, उस मैल से सफेदाई ढँक जाती है; इसी प्रकार भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन है नहीं परन्तु वह मिथ्यात्व के कारण ढँक जाता है अर्थात् होता नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : शक्ति में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ ऐसा नहीं है। शक्ति तो त्रिकाल है। यहाँ तो सम्यक्त्व जो प्रगट होना, सम्यग्दर्शन जो प्रगट होना, उसे मिथ्यात्वरूपी भाव ढाँक देता है अर्थात् होने नहीं देता। पर्याय की बात है। शक्ति में है, वह अभी (नहीं)। शक्ति में तो त्रिकाल है। आहाहा! यहाँ ज्ञान का समकित कहा है न! ज्ञान का समकित अर्थात् त्रिकाल की श्रद्धा, वह नहीं। ज्ञान का समकित अर्थात् आत्मस्वभाव की जो सम्यक् प्रतीति होना वह। उसे मिथ्यात्वरूपी मैल ढाँक देता है। आहाहा! यह मूल पहली चीज़ है।

अधिकार तो पुण्य-पाप का है न! आहाहा! पुण्य-पाप का भाव मेरा है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव.. उस ज्ञान का समकित-आत्मा का समकित, उसे वह ढाँक देता है। आहाहा! (अर्थात्) होने नहीं देता। आहाहा! पश्चात् तीसरे बोल में आयेगा कि समकितरूपी कारण का मिथ्यात्व है, वह विरुद्ध भाव है। मोक्ष के कारण का वह विरुद्ध भाव है। यहाँ कहते

हैं कि मोक्ष का कारण सम्यग्दर्शन, जो आत्मा का सम्यग्ज्ञान, उसे मिथ्यात्व ढाँक देता है, तिरोधायी कर डालता है। आहाहा!

दूसरा, **ज्ञान का ज्ञान..** है? आत्मा जो ज्ञानस्वरूप है.. **ज्ञान का ज्ञान..** अर्थात्? आत्मा का ज्ञान। आत्मा जो वस्तु त्रिकाल है, उसका पर्याय में ज्ञान (होना)। **जो कि मोक्ष का कारणरूप स्वभाव है..** देखा? वह तो कारणरूप स्वभावपर्याय की बात है न! आहाहा! **ज्ञान का ज्ञान..** त्रिकाल वस्तु भगवान चैतन्य ज्ञानस्वरूप का पर्याय में ज्ञान (होना)। वह **मोक्ष का कारणरूप स्वभाव है..** ज्ञान का ज्ञान, मोक्ष का कारणरूप स्वभाव है; ज्ञान का समकित, मोक्ष का कारणरूप स्वभाव है। यह पहले आ गया है। आहाहा! पर्याय की बात है। द्रव्य को तो कहाँ ढँकना है? वह तो त्रिकाली निरावरण है। आहाहा! वस्तु है, वह तो त्रिकाल निरावरण अखण्ड शुद्ध ज्ञानघन अखण्ड है। उसका तिरोभाव भी नहीं और आविर्भाव भी नहीं। आहाहा! वह तो ज्ञान हो, तब आविर्भाव हुआ, ऐसा कहने में आता है। वह तो है, वह है। ज्ञात नहीं होता, उसे तिरोभाव हो गया, ऐसा कहने में आता है। द्रव्य (तिरोभाव हो गया, ऐसा कहने में आता है परन्तु) यहाँ पर्याय की बात है। ११वीं गाथा में है न! आविर्भाव और तिरोभाव। वह ज्ञायक की बात है। आहाहा!

त्रिकाली चैतन्यभगवान-ज्ञानमूर्ति, वह जिसे जानने में नहीं आता, उसे वह तिरोभूत हो गया, तिरोभाव हो गया, वह तो है वह है, परन्तु जिसे जानने में नहीं आता, उसे तिरोभाव ही है और जिसे जानने में आता है, उसे वह ज्ञायकभाव आविर्भाव है। ज्ञायकभाव तो आविर्भाव-तिरोभावरहित त्रिकाल है, परन्तु पर्याय में जब आत्मा नहीं जानने में आया और विरोध हुआ, तब वह ज्ञायकभाव तिरोभूत है। आहाहा! और जब जानने में आया कि है भगवान सच्चिदानन्द प्रभु निर्मल शुद्ध चैतन्य, ऐसा ज्ञात हुआ, तब वह ज्ञायकभाव आविर्भाव हुआ। पर्याय की अपेक्षा से आविर्भाव और तिरोभाव (कहा है)। वहाँ पाठ तो ऐसा है कि ज्ञायकभाव तिरोभाव-आविर्भाव (हुआ)। ज्ञायकभाव तिरोभाव-आविर्भाव (नहीं होता)। वस्तु है, वह तो त्रिकाली एकरूप शुद्ध चैतन्यघन है, परन्तु इसके ख्याल में नहीं आया, इसलिए वह ज्ञायक इसे तिरोभूत हो गया और ख्याल में आया, तब इसे वह ज्ञानभाव— ज्ञायकभाव आविर्भाव हो गया, प्रगट हो गया। वह तो है, वह है परन्तु पर्याय में जानने में

आया, तब प्रगट हुआ, ऐसा (कहने में आता है)। आहाहा! अब ऐसी सब बातों (का) निर्णय करना। (ऐसा) कहीं (नहीं है), बापू!

जगत के झगड़े, जगत के तूफान.. आहाहा! तूफान तो तूने अन्दर में खड़ा किया है, कहते हैं। जो आत्मा का सम्यक्त्व है, जो मोक्ष का कारण है, उसे तूने मिथ्यात्वभाव से ढँक दिया है। आहाहा! तूने झगड़ा खड़ा किया है।

ज्ञान का ज्ञान है, पर्याय में, हों! वह ज्ञानस्वरूप भगवान शुद्ध चैतन्य, उसका ज्ञान है, वही ज्ञान मोक्ष के कारण (रूप) स्वभाव है। आहाहा! **वह, परभावस्वरूप अज्ञान..** स्वरूप का अज्ञान, ऐसा जो भाव। **अज्ञान नामक कर्ममल के द्वारा..** अज्ञान अर्थात् अज्ञान के भाव द्वारा। **व्याप्त होने से तिरोभूत हो जाता है..** आहाहा! (अर्थात्) उसे ज्ञान नहीं होता। ज्ञान ढँक जाता है। आहाहा!

यह तो कर्ता-कर्म (अधिकार की) ६९-७० (गाथा में) आया न! भाई! ऐसा कि अवस्था है, उसे प्रगट होने नहीं देता। अवस्था मानो कि (प्रगट) होवे नहीं। कर्ता-कर्म (की) ६९-७० (गाथा)। ज्ञायक की अवस्था, उसे उत्पन्न नहीं होने देता अर्थात् अवस्था मानो हुई हो। उसे ढाँक दी है। ६९-७० में आता है। ढाँकी है, इसका अर्थ कि उसे प्रगट नहीं किया। इसलिए वह पर्याय ढँक गयी है, इसलिए यह द्रव्य उसे दृष्टि में ढँक गया है। आहाहा! ऐसा है।

परभावस्वरूप अज्ञान नामक कर्ममल.. विकारभाव **के द्वारा व्याप्त होने से तिरोभूत हो जाता है-जैसे परभावस्वरूप मैल से व्याप्त हुआ..** श्वेतपना तो उसका स्वभाव है और मैल है, वह तो परभाव है। उस **परभावस्वरूप मैल से व्याप्त हुआ श्वेत वस्त्र का स्वभावभूत श्वेतस्वभाव तिरोभूत हो जाता है।** आहाहा! **इसी प्रकार..** यह ज्ञान। ज्ञान का ज्ञान, अज्ञान द्वारा तिरोभूत होता है। बस! दो बोल हुए—दर्शन और ज्ञान।

(अब कहते हैं), चारित्र **ज्ञान का चारित्र..** आहाहा! स्वरूप जो भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञायकभाव है, उसका चारित्र अर्थात् उसमें ही रमणता। आहाहा! भगवान आत्मा! यह तो कल तो आया था न! वीतरागभावरूप चारित्र शुद्ध उपयोगरूपी धर्म। आहाहा! वीतराग, परम वीतराग, चारित्रस्वरूप। आहाहा! शुद्ध उपयोगरूप जो धर्म। आहाहा! वह यह चारित्र। वह (इस) अचारित्र के परिणाम से ढँक जाता है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान का चारित्र.. अर्थात् आत्मा का चारित्र। अर्थात् कि आत्मा का परम वीतराग -चारित्ररूप शुद्ध उपयोगरूपी धर्म। आहाहा! वह **मोक्ष का कारणरूप स्वभाव है..** जो आत्मा का चारित्र है, वह तो मोक्ष के कारणरूप स्वभाव है। आहाहा!

वह, परभावस्वरूप कषाय.. देखो! आहाहा! कषाय मैल। क्रोध, मान, माया, लोभ, राग -द्वेष। ये चार क्रोध, मान, (आदि) राग-द्वेष के प्रकार हैं। राग—माया और लोभ, द्वेष—क्रोध और मान। ऐसा जो कषाय, परभावस्वरूप कषाय मैल। आहाहा! **मैल से व्याप्त हुआ.. परभावस्वरूप कषाय नामक कर्ममल के द्वारा व्याप्त होने से तिरोभूत होता है..** चारित्र प्रगट नहीं होता, उसे ढाँक देता है। अकषाय चारित्र, परम वीतराग, चारित्ररूप शुद्धोपयोगरूपी धर्म। '**चारित्तं खलु धम्मो**' वह धर्म। उसे परभाव ऐसा जो विकार कषायभाव, उसे ढाँक देता है। आहाहा! चाहे तो शुभराग हो तो भी वह परमचारित्र को ढाँक देता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा! है इसके घर में परन्तु घर में जाए, देखे, तब खबर पड़े न!

आहाहा! जो ज्ञान का चारित्र। ज्ञान का समकित, ज्ञान का ज्ञान, (वह) दो तो आ गये। (अब) आत्मा का चारित्र (कहते हैं)। भगवान आत्मा चिदानन्द शुद्ध चैतन्य का चारित्र (अर्थात्) परम वीतरागरूप शुद्ध उपयोगरूपी धर्म, वह मोक्ष का कारण है, उसे कषाय ढँक देती है। आहाहा! कहो, हीराभाई! ऐसी सूक्ष्म बात है। यह तो भाई! बहुत धीरज से काम लेना चाहिए। आहाहा! यह कहीं उतावल से आम पके, ऐसा नहीं है। गुठली बोयी और आम तुरन्त हो जाए, ऐसा है? इसीलिए लोग नहीं कहते, उतावल से आम नहीं पकते। गुठली बोयी हो, इसलिए कि लाओ आम-आम, परन्तु ऐसा नहीं होता भाई! जरा धीरज रख।

इसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, इसका समकित, वह मिथ्यात्वभाव से ढँक जाता है। पूर्णानन्द के नाथ प्रभु का ज्ञान, वह अज्ञान से ढँक जाता है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, ऐसा जो चारित्र—परम वीतरागचारित्ररूप शुद्ध उपयोग—ऐसा जो धर्म, वह अशुद्ध उपयोग ऐसा जो विकार कषाय, उससे ढँक जाता है। आहाहा! अब ऐसी बातें!

जैसे परभावस्वरूप मैल से व्याप्त हुआ श्वेतवस्त्र का स्वभावभूत श्वेत स्वभाव

तिरोभूत हो जाता है। इसलिए मोक्ष के कारण का (-सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र का-) तिरोधान करनेवाला होने से.. तिरोभूत (अर्थात्) ढंक देता होने से। **कर्म का निषेध किया गया है।** यह पुण्य और पाप के भाव मेरे हैं, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, पुण्य और पाप के भाव को जाननेवाला, वह अज्ञान और पुण्य तथा पापरूपी भाव, वह अचारित्र। आहाहा! उसे **तिरोधान करनेवाला होने से कर्म का निषेध किया गया है।** यह मिथ्यात्वरूपी भाव, अज्ञानरूपी भाव और शुभ-अशुभरूपी मैल-भाव का निषेध किया गया है। आहाहा! इस कारण से निषेध किया गया है, ऐसा कहते हैं।

आत्मा का जो सम्यग्दर्शन पर्याय में होना चाहिए, वह विपरीत मान्यता के मैल से ढँक जाता है। इसलिए वह कर्म अर्थात् शुभाशुभभाव और उन्हें अपना मानना, इसका यहाँ निषेध किया गया है। निषेध किया है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : मोक्ष के कारणरूप स्वभाव व्यक्त है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, व्यक्त कहाँ है? होता नहीं, ढँक देता है—ऐसा कहा न! कर्ता-कर्म (अधिकार में) कहा न! कर्ता-कर्म का नहीं कहा? ६९ गाथा। दृष्टान्त दिया है न!

मुमुक्षु : तिरोधान कर्ता होने से (ऐसा कहा न)?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो होने नहीं दिया, इसलिए उसका अर्थ यह हुआ। देखो!

देखो! **जो यह आत्मा अपने अज्ञानभाव से; ज्ञानभवनमात्र सहज उदासीन (ज्ञातादृष्टामात्र) अवस्था का त्याग करके..** अर्थात् अवस्था थी? थी उसका त्याग करके नहीं परन्तु वह अवस्था होती नहीं, उसका त्याग (करके, ऐसा) इसका अर्थ है। आहाहा! ज्ञातादृष्टा की अवस्था हुई नहीं, उसका इसने अज्ञान, मिथ्यात्वभाव से त्याग किया, (ऐसा कहना है)। आहाहा! है? **ज्ञानभवनमात्र सहज उदासीन (ज्ञातादृष्टामात्र) अवस्था..** मानो हो। **उसका त्याग करके..** अर्थात् उस अवस्था को उत्पन्न न होने देकर, ऐसा। उसका त्याग किया, मिथ्यात्व आदि को ग्रहण किया। आहाहा! ऐसा यहाँ (लेना)।

भावार्थ : सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र मोक्षमार्ग है। वह प्रगट है, पर्याय है-ऐसा नहीं। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है, ऐसा सिद्ध किया। उस

ज्ञान का सम्यक्त्वरूप परिणमन.. आत्मा का समकितरूपी परिणमन। **मिथ्यात्व..** मैल से **तिरोभूत होता है;..** मिथ्याश्रद्धारूपी मैल, पुण्य से धर्म है, व्यवहार से निश्चय होता है, उससे मुझे लाभ है—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उससे सम्यक्त्व नहीं होता परन्तु सम्यक्त्व को ढाँक देता है, ऐसा।

मुमुक्षु : जब तक मिथ्यात्व है, तब तक सम्यक्त्व होता नहीं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व है परन्तु यहाँ तो मिथ्यात्व से ढँक जाता है, यह बात करनी है। मिथ्यात्व है, वह तीसरे बोल में लेंगे। सम्यक्त्व से विरुद्ध भाव है, वह बाद में लेंगे। यहाँ तो पहले सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का मार्ग है, वह यहाँ नहीं है, उसे ढँक देनेवाला मिथ्यात्व, अज्ञान और राग-द्वेष है। इतनी बात है। समझ में आया?

तीन प्रकार लेंगे - एक तो भगवान आत्मा का जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है नहीं परन्तु वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का कारण है, उसे मिथ्यात्व, अज्ञान और कषाय ढँक देते हैं। अर्थात् उसे वह है नहीं। उसे है मिथ्यात्व, अज्ञान और राग-द्वेष। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : जो है नहीं, उसे कैसे रख सकते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहा न! बात की न! होना चाहिए, वह उसे होने दिया नहीं, इसलिए हुई नहीं, (ऐसा कहा)। इसलिए तो पहले ६९ (गाथा) बतायी थी। ज्ञातादृष्टा की उदासीन अवस्था (का त्याग किया)। ऐसा कहकर उसे होने नहीं दिया, उसका त्याग किया। त्याग किया अर्थात् हुई है और त्याग किया है, ऐसा नहीं है। हुई नहीं, उसका नाम त्याग किया। यह तो पहले ६९-७० (गाथा का) दृष्टान्त दिया। सूक्ष्म बात है, बापू! बहुत कठिन बात! आहाहा! जैनधर्म यह समझना वस्तु का स्वभाव है। आहाहा!

यहाँ तो ६९-७० (गाथा में) कहा नहीं? ज्ञातादृष्टा की उदासीन अवस्था का त्याग करके। अर्थात् अवस्था है? त्याग ही है।

मुमुक्षु : अनादि से त्याग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्याग ही है। इसे अवस्था हुई ही नहीं। मिथ्यात्व, अज्ञान और कषाय के कारण उस अवस्था का त्याग है। त्याग है अर्थात् (वह) अवस्था इसे नहीं है,

यह अवस्था है। आहाहा! (अर्थात्) मिथ्यात्व, अज्ञान और राग-द्वेष की अवस्था है। मोक्ष के कारण की अवस्था का इसने त्याग किया है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! शब्द फेर से (बड़ा फेर हो जाता है)। यह तो शास्त्र है न! यह तो अध्यात्म शास्त्र है, गम्भीर शास्त्र है, भाई! इसमें अमृतचन्द्राचार्यदेव की टीका! आहाहा! खोल दिया है कपाट! कहते हैं कि खोल दिये वे कपाट की जो दशा चाहिए, उस दशा को मिथ्यात्व ने ढाँक दिया है और खोला है नहीं। शशीभाई! आहाहा!

यह पहली तीन (बातों में) कहा न! श्वेतवस्त्र है, उसका श्वेतपना प्रगट चाहिए, उसे मैल ने ढँक दिया है। त्रिकाली श्वेत है, ऐसा नहीं, परन्तु श्वेत की जो श्वेत पर्याय चाहिए, उसे मैल ने ढँक दिया है अर्थात् श्वेत की पर्याय रही नहीं। उसे ढँक दिया है। पर्याय की बात है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा अमृत का सागर प्रभु है। उसकी दशा तो ज्ञातादृष्टा और समकित की होना चाहिए। आहाहा! उस दशा को न होने देकर उसका त्याग करके, मिथ्यात्वभाव ने उसे ढँक दिया है अर्थात् होने नहीं दिया है, ऐसा (आशय है)। आहाहा! एक न्याय बदले तो पूरी वस्तु बदल जाए। यह तो वस्तुस्थिति है। यह ६९-७० (गाथा में) कहा न! ज्ञातादृष्टा की उदासीन अवस्था का त्याग करके। त्याग करके अर्थात् अवस्था थी? वह अवस्था नहीं हुई, उसका त्याग किया, ऐसा उसका अर्थ है। आहाहा! भगवान आत्मा की अवस्था तो ज्ञातादृष्टा होनी चाहिए। राग का भी ज्ञान और पर का ज्ञान और पर की उदासीन अवस्था होनी चाहिए। उस उदासीन अवस्था का त्याग करके। त्याग करके अर्थात् उदासीन अवस्था प्रगट न होने देकर। आहाहा! मिथ्यात्व, अज्ञान और कषाय ने उस पर्याय को ढँक दिया है अर्थात् प्रगट है और ढँक दिया है - ऐसा नहीं है। प्रगट नहीं होने दिया। आहाहा! समझ में आये ऐसा है, भाई! आहाहा! भाषा तो सादी है परन्तु भाव तो भाई! है, वह है। आहाहा!

भावार्थ : सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र मोक्षमार्ग है। यह तो समझाते हैं। एक आत्मा का **सम्यक्त्वरूप परिणमन..** देखा? वह **मिथ्यात्वकर्म से तिरोभूत होता है;..** (अर्थात् कि) परिणमन हुआ नहीं। मिथ्याश्रद्धा (अर्थात्) राग, पुण्य से मुझे धर्म होगा, पाप में सुखपना है, (ऐसी मान्यता)। आहाहा!

आगे के अधिकार में तो अन्त में ऐसा लेंगे कि भाई! यह अधिकार तो व्यवहार

सम्यग्दर्शन-चारित्र का चलता है और इसमें तुम यह व्यवहार है, वह झूठा है। यह तो अन्त में आता है। पुण्य है, वह वास्तव में तो पवित्र है और अधिकार तो पाप का चलता है। अर्थात् कि व्यवहाररत्नत्रय का अधिकार चलता है और तुम (कहते हो) अधिकार पाप का चलता है, वहाँ तुम व्यवहाररत्नत्रय को क्या कहना चाहते हो? बापू! व्यवहाररत्नत्रय है, वह निश्चय से तो पाप है। वह व्यवहाररत्नत्रय, निश्चयरत्नत्रय के साथ होने से व्यवहार से पवित्रता का कारण है, ऐसा आरोप से कहा जाता है, तथापि वह पवित्रता का कारण न होकर, होना चाहिए और परम्परा से मोक्ष का कारण है व्यवहार (वह) निश्चय है इसलिए। परन्तु ऐसा न होकर... आहाहा! वह वस्तु के स्वरूप से पतित हो जाता है, निश्चयनय से पतित हो जाता है, इसलिए उस व्यवहाररत्नत्रय को हम यहाँ पाप कहते हैं। पहले पवित्रता, निश्चयरत्नत्रय (की) पवित्रता का निमित्तपना है, ऐसा कारण कहा तो भी फिर गुलांट खाकर बात की है। आहाहा! कि भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ पवित्र है, उसमें से हट जाता है। व्यवहाररत्नत्रय में-राग में च्युत हो जाता है, पतित होता है, इसलिए उस व्यवहाररत्नत्रय को पाप कहते हैं। आहाहा! संस्कृत टीका में अन्त में है।

मुमुक्षु : जयसेनाचार्यदेव की टीका में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, है न! सब बात हो गयी है, बहुत बात हो गयी। यह तो १९वीं बार चलता है, यह तो १९वीं बार पढ़ा जाता है। अठारह बार तो पढ़ा गया है। यह पहले से ठेठ तक पूरा अठारह बार पढ़ा गया है। वापस १९वीं बार (चलता है)। आहाहा! यह आयेगा तब लेंगे।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र मोक्षमार्ग है। यह तो स्वरूप बतलाया। उसे प्रगट हुआ है, ऐसा नहीं। **ज्ञान का सम्यक्त्वरूप परिणमन..** ऐसा चाहिए। त्रिकाली भगवान आत्मा सच्चिदानन्द शुद्ध प्रभु का सम्यक्त्व का परिणमन चाहिए। वस्तु का स्वरूप है, उसका परिणमन (चाहिए)। श्रद्धा का सम्यक् परिणमन चाहिए। वह मिथ्यात्वरूप भाव से **तिरोभूत होता है;..** जड़ मिथ्यात्वकर्म निमित्त है परन्तु यहाँ मिथ्यात्वभाव-मैल है। मिथ्यात्वरूपी मैल से ढँक जाता है अर्थात् सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा!

ज्ञान का ज्ञानरूप परिणमन.. देखो! ज्ञान अर्थात् आत्मा। उसका **ज्ञानरूप..** अर्थात्

ज्ञान आत्मारूप परिणमन। शुद्धस्वरूप का शुद्धरूप से परिणमन, वह ज्ञान, परिणमन। वह अज्ञानरूप मैल से तिरोभूत होता है। अज्ञानरूप मैल से स्वरूप का अज्ञान और राग का ज्ञान, उसकी ओर के लक्ष्य से ऐसे अज्ञानभाव से उस ज्ञान का ज्ञान—स्वरूप का ज्ञान, वह तिरोभूत हो जाता है। आहाहा! अकेला राग और निमित्त का ज्ञान करने जाता है, तब जो आत्मा का ज्ञान है, वह वहाँ तिरोभूत हो जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सामने पुस्तक है न? किस शब्द का अर्थ होता है? आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म है, बापू! आहाहा! यह कहीं 'हल्दी की गाँठ से पंसारी' हुआ जाए, ऐसा नहीं है। गम्भीर चीज़ है। प्रभु का वीतरागमार्ग बहुत गम्भीर है। आहाहा!

और ज्ञान का चारित्ररूप परिणमन.. देखो न, स्पष्ट भाषा ली है! ज्ञान अर्थात् आत्मा, उसका चारित्र अर्थात् वीतराग चारित्र शुद्धोपयोगरूपी धर्म का परिणमन। **कषायकर्म से तिरोभूत होता है।** वह परिणमन नहीं होता। पुण्य और पाप के भाव होने पर वीतरागी चारित्र है, वह नहीं होता; इसलिए वह ढँक गया है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह कोई कथा-वार्ता नहीं है, बापू!

(यह तो) तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव की वाणी है। सन्त यह वाणी कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्यदेव, अमृतचन्द्राचार्यदेव दिगम्बर सन्त.. आहाहा! भगवान की वाणी से कहते हैं। बन्ध अधिकार में आता है न! भगवान ऐसा कहते हैं, लो! स्वयं कहते हैं, ऐसा नहीं कहते। जिनवरदेव ऐसा कहते हैं, (ऐसा आचार्यदेव कहते हैं।) स्वयं कहते हैं, वह सत्य है (क्योंकि ये स्वयं) मुनि हैं, परन्तु जिनवरदेव ऐसा कहते हैं कि पर को जिला सकता हूँ, यह मान्यता मिथ्यात्व है। आहाहा! ऐसा जिनवरदेव कहते हैं। पर की दया पाल सकता हूँ,... तुझे कठिन तो लगे प्रभु! कहता हूँ कि यह तो जिनवरदेव कहते हैं। आहाहा! तू पर की दया पाल सकता तो नहीं परन्तु पर की दया का भाव, राग होता है.. आहाहा! वह भी स्वरूप की हिंसा होती है। वीतरागभाव होने पर वीतरागभावस्वरूप में राग होने पर पर्याय की वीतरागता का ह्रास होता है, ऐसा जिनवरदेव कहते हैं, प्रभु! तुझे कठिन लगता हो तो। आहाहा! अरे! कहाँ जाना? आहा!

ज्ञान का.. अर्थात् आत्मा का **चारित्ररूप परिणमन..** परिणमन-पर्याय लेनी है

न यहाँ! वह होने नहीं देता, ऐसा कहते हैं। कषायरूपी कर्म (अर्थात्) पुण्य और पाप के भाव, वे सब कषाय हैं, अचारित्र हैं। उस अचारित्र से चारित्र तिरोभूत होता है। आहाहा! यह जो दया, दान, व्रत के परिणाम के प्रेम में गया तो वहाँ चारित्र है, वह नहीं होता, ढँक जाता है। वह अचारित्र खड़ा हुआ। आहाहा! महाव्रत के परिणाम में गया, (उनके) प्रेम में वहाँ गया.. आहाहा! तो वहाँ वह अचारित्र खड़ा होता है, वहाँ चारित्र ढँक जाता है। ऐसी बात है। जयन्तीभाई! कहीं नहीं मिलती, सुनने को मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा! आहाहा!

इस प्रकार मोक्ष के कारणभावों को.. देखा? मोक्ष के कारणभावों (रूप) पर्याय को **कर्म तिरोभूत करता है..** यह पुण्य और पाप का भाव, मिथ्यात्व आदि ढँक देता (होने से) **उसका निषेध किया गया है।** इसलिए उसका निषेध किया गया है। यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो मोक्ष का कारण है, उसे व्यवहाररत्नत्रय के रागादिभाव वे मेरे और वे मुझे लाभदायक हैं, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह चारित्र होनें नहीं देता, दर्शन होने नहीं देता, ज्ञान (होने नहीं देता), इसलिए उनका निषेध किया है। समझ में आया?

यह पुण्य-परिणाम मेरे, ऐसी मान्यता। पुण्य-परिणाम के ऊपर अकेला ज्ञान और पुण्य-परिणाम की रमणता, ये तीनों, प्रभु! आत्मा का समकित, ज्ञान और चारित्र होने नहीं देता, इसलिए इसका हमने निषेध किया है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ है? **उसका निषेध किया गया है।** लो!

अब कर्म स्वयं बन्धस्वरूप है, इसकी एक गाथा है। पुण्य और पाप का भाव, वह मेरा है, यह मिथ्यात्वभाव; इसका ज्ञान, वह अज्ञान और इसका आचरण, वह अचारित्र। ये तीनों मोक्ष के मार्ग को ढँकनेवाले होने से, इनका हमने निषेध किया है। आहाहा! अब यह कहते हैं कि यह स्वयं पुण्य-पाप का भाव, वह मेरा—ऐसा मिथ्यात्वभाव और पुण्य-पाप का भाव, वह स्वयं कर्मस्वरूप है, बन्धस्वरूप है (-ऐसा कहते हैं)। वह तो बन्धस्वरूप ही है।

भगवान आत्मा अबन्धस्वरूप है। आहाहा! **'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं'** आता है न! १४ और १५ गाथा (समयसार)। वह अबद्धस्वरूप जो भगवान आत्मा है, उसमें पुण्य और पापभाव, वह बन्धस्वरूप है। वह पुण्य और पाप का भाव, कर्म अर्थात् कार्य, वह बन्धस्वरूप है। आहाहा! स्वयं बन्धस्वरूप है।

गाथा–१६०

अथ कर्मण: स्वयं बन्धत्वं साधयति –

सो सव्वणाण–दरिसी कम्मरएण णियेणावच्छण्णो।
संसार–समावण्णो ण विजाणदि सव्वदो सव्वं।।१६०।।

स सर्वज्ञान–दर्शी कर्म–रजसा निजेनावच्छन्न:।
सन्सार–समापन्नो न विजानाति सर्वत: सर्वम्।।१६०।।

यत: स्वयमेव ज्ञानतया विश्वसामान्यविशेषज्ञानशीलमपि ज्ञानमनादिस्वपुरुषापराधप्रवर्तमान –कर्ममलावच्छन्नत्वादेव बन्धावस्थायां सर्वत: सर्वमप्यात्मानमविजानदज्ञानभावेनैवेदमेवमवतिष्ठते, ततो नियतं स्वयमेव कर्मैव बन्ध:। अत: स्वयं बन्धत्वात्कर्म प्रतिषिद्धम्।।१६०।।

अब, यह सिद्ध करते हैं कि कर्म स्वयं ही बन्धस्वरूप है:–

यह सर्वज्ञानी–दर्शि भी, निजकर्म रज आच्छाद से।
संसार प्राप्त, न जानता वो सर्व को सब रीत से।।१६०।।

गाथार्थ : [स:] वह आत्मा [सर्वज्ञानदर्शी] (स्वभाव से) सर्व को जानने–देखनेवाला है तथापि [निजेन कर्मरजसा] अपने कर्ममल से [अवच्छन्न:] लिप्त होता हुआ–व्याप्त होता हुआ [संसार समापन्न:] संसार को प्राप्त हुआ वह [सर्वत:] सब प्रकार से [सर्व] सर्व को [न विजानाति] नहीं जानता।

टीका : जो स्वयं ही ज्ञान होने के कारण विश्व को (–सर्व पदार्थों को) सामान्य –विशेषतया जानने के स्वभाववाला है, ऐसा ज्ञान अर्थात् आत्मद्रव्य, अनादि काल से अपने पुरुषार्थ के अपराध से प्रवर्तमान कर्ममल के द्वारा लिप्त या व्याप्त होने से ही, बन्ध –अवस्था में सर्व प्रकार से सम्पूर्ण अपने को अर्थात् सर्व प्रकार से सर्व ज्ञेयों को

जाननेवाले अपने को न जानता हुआ, इस प्रकार प्रत्यक्ष अज्ञानभाव से (–अज्ञानदशा में) रह रहा है; इससे यह निश्चित हुआ कि कर्म स्वयं ही बन्धस्वरूप है। इसलिए, स्वयं बन्धस्वरूप होने से कर्म का निषेध किया गया है।

भावार्थ : यहाँ भी 'ज्ञान' शब्द से आत्मा समझना चाहिए। ज्ञान अर्थात् आत्मद्रव्य स्वभाव से तो सबको जानने–देखनेवाला है परन्तु अनादि से स्वयं अपराधी होने के कारण कर्मों से आच्छादित है, इसलिए वह अपने सम्पूर्ण स्वरूप को नहीं जानता; यों अज्ञानदशा में रह रहा है। इस प्रकार केवलज्ञानस्वरूप अथवा मुक्तस्वरूप आत्मा कर्मों से लिप्त होने से अज्ञानरूप अथवा बद्धरूप वर्तता है, इसलिए यह निश्चित हुआ कि कर्म स्वयं ही बन्धस्वरूप हैं। अत: कर्मों का निषेध किया गया है।

गाथा - १६० पर प्रवचन

यह सिद्ध करते हैं कि कर्म स्वयं ही बन्धस्वरूप है:– १६० (गाथा)। आहाहा! सेठ हुकमचन्दजी आये थे, तब यह अधिकार चला था।

सो सव्वणाण–दरिसी कम्मरएण णियेणावच्छण्णो।
संसार–समावण्णो ण विजाणदि सव्वदो सव्वं।।१६०।।

यह सर्वज्ञानी–दर्शि भी, निजकर्म रज आच्छाद से।
संसार प्राप्त, न जानता वो सर्व को सब रीत से।।१६०।।

यह सर्वज्ञानी–दर्शि भी,.. भगवान स्वयं सर्वज्ञान–सर्वदर्शी है। आहाहा! आहाहा! कोई भी चीज़ पर को मारनेवाला नहीं तथा पर से अपने में हो ऐसा होनेवाली नहीं। वह तो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी स्वभावी प्रभु है। आहा!

यह सर्वज्ञानी–दर्शि भी, निजकर्म रज आच्छाद से। देखो! यहाँ 'रज' (शब्द) रखा है, तथापि पुरुषार्थ लेंगे। कर्मरज शब्द है। तब यहाँ जीवन्धरजी और वे थे। आहाहा! देखो! यह कर्मरज (शब्द) है, इसका अर्थ करेंगे – पुरुषार्थ। इसका पुरुषार्थ उल्टा है। **संसार प्राप्त, न जानता वो सर्व को सब रीत से।** आहाहा! गाथा.. **जो स्वयं ही ज्ञान होने के कारण..** भगवान तो ज्ञानस्वरूप है। जैसे आँख ज्ञानस्वरूप है, वैसे दूसरे सबको

उससे जाननेवाली है। किसी को रचनेवाली और किसी को तोड़नेवाली, किसी की पर्याय का उत्पाद करनेवाली, किसी की पर्याय का व्यय करनेवाली आँख नहीं है। इसी प्रकार भगवान ज्ञानस्वरूप है, वह अपने अतिरिक्त पर की किसी पर्याय का उत्पाद करनेवाला और किसी पर्याय का व्यय करनेवाला आत्मा नहीं है। आहाहा!

जो स्वयं ही ज्ञान होने के कारण.. वह जाननेवाला.. जाननेवाला.. जाननेवाला चन्द्रमा, जिनचन्द्र प्रभु! आहाहा! वीतरागी ज्ञानस्वरूपी शीतल प्रभु आत्मा, **स्वयं ही ज्ञान होने के कारण विश्व को (-सर्व पदार्थों को)..** सर्व पदार्थ। **सामान्यविशेषतया जानने के स्वभाववाला है,..** आहाहा! भगवान आत्मा अकेला ज्ञान और दर्शनस्वभाव, उसका यह त्रिकाली स्वभाव है। इसलिए वह परपदार्थ को जानने-देखने के स्वभाववाला है। आहाहा! यह सामान्य अर्थात् दर्शन से और विशेष अर्थात् ज्ञान। जानने-देखने के स्वभाववाला है।

ऐसा ज्ञान अर्थात् आत्मद्रव्य,.. ऐसा। मूल तो यह द्रव्य लेना है न! ऐसा जो **आत्मद्रव्य, अनादि काल से..** देखो! वह कर्मरज शब्द था न! 'कर्मरज आच्छाद को' कर्मरज से ढँका हुआ है। उसका अमृतचन्द्राचार्यदेव ने अर्थ किया है। वह **अपने पुरुषार्थ के अपराध से प्रवर्तमान..** जीवन्धर, सेठ थे, तब यह अर्थ किया था। उन लोगों को कर्म निकालना (था)। सबको कर्म, कर्म, कर्म बाधक है और कर्म के कारण (विकार होता है)। जैन में कर्म घुस गया। दूसरों में ईश्वरकर्ता घुस गया। (वहाँ) ईश्वरकर्ता (और) इन्हें (जैन को) जड़कर्म कर्ता। उनको चैतन्यकर्ता। आहाहा! जहाँ हो वहाँ कर्मकर्ता, कर्मकर्ता.. राग होवे तो कर्म के कारण होता है, द्वेष होवे, (वह) कर्म के कारण, विषय वासना कर्म के कारण होती है.. ऐई! जड़ के कारण तुझमें विकार होता है, यह तू क्या कहता है? वह (अन्यमति) ईश्वरकर्ता कहे, तू तेरे भाव का जड़कर्म को कर्ता कहे। आहाहा! मूढ़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : आपने नया ढ़िंढ़ोरा पीटा!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है। इतना शान्ति से कहा। कितने वर्ष हुए? चौंसठ! चौंसठ वर्ष हुए। (संवत्) १९७१ से 'लाठी' में ढिंढ़ोरा पीटा था। दोपहर को एक घण्टे पढ़ना पड़ता था, (तब कहा था), कर्म के कारण विकार होता है, यह बात है नहीं। भगवती

(सूत्र) पढ़ता था, भगवती (सूत्र)! उसका तीसरा अध्ययन आया था। उसमें संशय का अधिकार आया था। उसमें से निकाला था। तब तो यह समयसार हाथ (में) कहाँ था? समयसार तो (संवत्) १९७८ में मिला। उसे कहकर दोपहर के व्याख्यान में रखा था। कर्म के कारण, ज्ञानावरणीय के कारण ज्ञान ढँकता है, दर्शनमोहनीय के कारण मिथ्यात्व होता है, यह बात शास्त्र में नहीं है, कहा। यह कर्म जड़ है, प्रभु! तू तेरी भूल करता है, वह तुझे नुकसान कर्ता है। आहाहा!

यहाँ पाठ में कर्मरज शब्द है। अमृतचन्द्राचार्यदेव ने अर्थ किया **अपने पुरुषार्थ के अपराध से..** ज्ञानावरणीय के कारण ज्ञान ढँकता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! तेरे पुरुषार्थ की विपरीतता है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। तू भगवान को भूला, भूल के कारण भटकता है और वह भूल तेरी यह (है कि)... श्रीमद् में आता है कि, पर को अपना मानना, स्वयं अपने को भूल जाना, (यह तेरी भूल है)। आहाहा! देखा? पाठ में क्या था? '**कम्मरएण**' है न? दूसरा पद '**कम्मरएण**' कर्मरूपी रज। अर्थ किया कि अपना अपराध। वह कर्म अर्थात् भाव - विकारी परिणाम, वह कर्मरज। आहाहा! जड़ बेचारे क्या करे? 'कर्म बेचारे कौन भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहै घनघात लोह की संगति पाई' अकेली अग्नि को कोई घन नहीं मारता परन्तु वह अग्नि यदि लोहे में गयी... उस लोहे का पाट होता है न? उस पहिये का पाट, गाड़ी का। गर्म होती है, ऐसे घन पड़ते हैं।

इसी प्रकार भगवान आत्मा अकेला ज्ञातादृष्टा रहे, उसे दुःख नहीं होता परन्तु वह राग और पुण्य और पाप में घुस जाता है, वे मेरे हैं, (ऐसा जो मानता है), उसे दुःख के घन पड़ते हैं, बापू! आहाहा! अष्टपाहुड़ में यहाँ तक लिया है पैसेवाले के लिए कि, तू वर्तमान में दुःखी है, हों! ऐसा लिया है। वर्तमान में तू दुःखी है, दुःखी। भूतकाल में हो गया, वह नहीं, परन्तु तू वर्तमान में दुःखी है। आत्मा का ज्ञान नहीं, आत्मा कौन है, उसका भान नहीं, तू वर्तमान में दुःखी है। आहाहा! वह दुःख के परिणाम मिथ्यात्व, अज्ञान, राग-द्वेष वह परिणाम तूने किये हैं। तेरे अपराध के कारण तुझमें हुए हैं। कर्म के कारण हुए हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! अब ऐसी बातें। इसे नहीं जँचती न, (इसलिए) बेचारा विरोध करे कि यह तो बिल्कुल कर्म से कुछ होता नहीं, (ऐसा ही कहते हैं)। जैनदर्शन तो कहता है, कर्म-कर्ता और कर्म का भोक्ता। उत्तराध्ययन के बीसवें अध्ययन में आता है। 'अप्पा कर्ता

विवर्ताये।' अनाथी मुनि के अधिकार (में आता है), बापू! वह कर्ता कौन? कहा। अपने अशुद्ध परिणाम का कर्ता है, इसलिए कर्म निमित्त (देखकर) कहा कि वह कर्ता है। वह तो आरोप देकर कर्ता कहा है। आहाहा! जड़ को स्पर्श नहीं करता, प्रभु! और चैतन्य स्वयं जड़ को स्पर्श नहीं करता। अब स्पर्श किये बिना एक-दूसरे के भाव दूसरा करता है, प्रभु! यह क्या है? आहाहा! ऐसी बात है।

विश्व को.. स्वयं ही ज्ञान और ज्ञानस्वरूप और तथा दर्शनस्वरूप है। ज्ञान की प्रधानता से कहा है न! परन्तु ज्ञानस्वरूप, दर्शनस्वरूप ज्ञातादृष्टा। वहाँ ज्ञातादृष्टा लिया है न? ६९-७० (गाथा में)। ६९-७० (गाथा में) ज्ञातादृष्टा (लिया है)। ज्ञातादृष्टा की उदासीन अवस्था होनी चाहिए, उसका त्याग करके वह राग का कर्ता होता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि ज्ञान—आत्मा जो विश्व को जानने के स्वभाववाला है। **जानने के स्वभाववाला है,..** ज्ञान अर्थात् आत्मा। **ऐसा ज्ञान अर्थात् आत्मद्रव्य, अनादि काल से..** निगोद में भी अपने पुरुषार्थ के अपराध से प्रवर्तित हुआ है। आहाहा! निगोद में कर्म का जोर है और यहाँ मनुष्य हुआ, तब कर्म का जोर कुछ कम है; इसलिए यहाँ (ज्ञान का) उघाड़ हुआ है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

अनादि काल से.. जब निगोद में था तब। अनन्त काल में तो त्रस हुआ है, प्रभु! उसमें से लट और चींटी अनन्त काल में हुआ। उसमें से अनन्त काल में मनुष्यपना मिला है। आहाहा! उसमें जैन कुल मिला और जैन की वाणी मिली, वहाँ तक प्रभु! तू आया है न! सब अवसर आ गया है। आहाहा! आहाहा!

विवाह में गाते हैं 'पाछे नहीं फरे रे, नाणा नो बल नो वलियो' ऐसा कुछ गाते हैं। यह तो मैंने सुना हुआ है, इसलिए (याद है)। वर तोरण से वापस नहीं फिरता। क्यों? कि नाणा का वलिया वर है। नाणू अर्थात् पैसे के बल का वलिया है। विवाह में गाते हैं, विवाह में। इसी प्रकार आनन्द और ज्ञान का बलिया आत्मा, वह वापस नहीं फिरता। अब संसार में नहीं जाता। आहाहा! 'तोरण में आया..' ऐसा कुछ है अवश्य, सुना है। खुशालभाई के विवाह में तो मैं ऐसे अलग रहा, परन्तु कुँवरजीभाई का रथ निकला था। उनका यह दूसरा विवाह हुआ, यह दूसरा विवाह का लड़का है। तब मैं वहाँ उपाश्रय में था। (संवत्)

१९७२, रथ निकला। ऐसे वहाँ अन्दर बोलते थे। 'नाणाणों बलियो पाछो तोरणथी नहीं फरे' ऐसा कुछ है, महिलाएँ गाती हैं। आहाहा!

इसी प्रकार ज्ञान और आनन्द का बलवाला प्रभु, वह अब वापस नहीं फिरेगा। यह अपने ९२ गाथा में आ गया है। दोपहर में। आगम को शल्य और आत्मज्ञान द्वारा मिथ्यात्वदृष्टि नष्ट हो गयी है, वह हमें अब फिर से होनेवाली नहीं है। आहाहा! यह उन सन्त की पुकार! आहाहा! यह सन्त कहलाते हैं, बापू! आहाहा! शान्ति को प्राप्त करावे, उन्हें सन्त कहते हैं, उनके दासानुदास होकर रहते हैं। आहाहा!

यह **आत्मद्रव्य, अनादि काल से..** अनादि काल से। निगोद से लेकर, हों! कोई ऐसा कहे कि नहीं, नहीं। वहाँ कर्म का जोर है, इसलिए वहाँ रह गया है। ऐसा नहीं है। बहुत से ऐसा कहते हैं कि निगोद में है तो कर्म का जोर है। फिर अब बाहर आया (तो) कर्म का जोर घट गया। 'कच्छवी कम्म बलियो, कच्छवी जीवो बलियो' इष्टोपदेश में आता है। टीका में आता है। वहाँ यह डालते हैं - किसी समय कर्म का जोर है और किसी समय जीव का जोर है। यह प्रभाशंकर पटणी यहाँ बोला था। दीवान था! भावनगर का दीवान था न! प्रभाशंकर पटणी! व्याख्यान में आया था। (संवत्) १९९३ के वर्ष की बात है। १९९३! कितने हुए? ४२ वर्ष हो गये। वह ऐसा बोला था। बड़ा दीवान, खड़ा होकर बोला था (कि) किसी समय कर्म का जोर है और किसी समय आत्मा का जोर है। व्याख्यान सुनकर फिर (यह बोला था)। अरे! कहा, यह तो सब उल्टा किया! प्रभाशंकर पटणी दीवान था न!

यहाँ कहते हैं कि **अपने पुरुषार्थ के अपराध से प्रवर्तमान कर्ममल के द्वारा...** देखा? वह उल्टा पुरुषार्थ है, वह कर्ममल है। आहाहा! कर्म जड़ है, अजीव है, उसे तो कभी छूता नहीं। एक द्रव्य अपने गुण-पर्याय के अतिरिक्त पर की पर्याय को कभी तीन काल में स्पर्श नहीं हुआ है। आहाहा!

अपने पुरुषार्थ के अपराध से प्रवर्तमान कर्ममल के द्वारा लिप्त या व्याप्त होने से.. आहाहा! **होने से ही, बन्ध-अवस्था में..** पहले कहा न! **विश्व को (-सर्व पदार्थों को)..** जानने-देखने का स्वभाव है, ऐसा आत्मद्रव्य है। वस्तु तो ऐसी है परन्तु **बन्ध-अवस्था में सर्व प्रकार से सम्पूर्ण अपने को अर्थात् सर्व प्रकार से सर्व ज्ञेयों**

को जाननेवाले अपने को न जानता हुआ,.. आहाहा! **सर्व प्रकार से सम्पूर्ण अपने को अर्थात् सर्व प्रकार से सर्व ज्ञेयों को जाननेवाले अपने को न जानता हुआ,..** यह तो सर्व का जाननेवाला-देखनेवाला है, उसे नहीं जानता हुआ। आहाहा! वह अपने अपराध के कारण है, कर्म के कारण है - ऐसा नहीं। आहाहा!

बन्ध अवस्था में अपने अपराध से प्रवर्तते हुए मैल की दशा में। आहाहा! **सर्व प्रकार से सम्पूर्ण अपने को..** स्वयं आत्मा सर्व प्रकार से और सम्पूर्ण ऐसे अपने को **सर्व प्रकार से सर्व ज्ञेयों को जाननेवाले अपने को न जानता हुआ,..** आहाहा! **इस प्रकार प्रत्यक्ष अज्ञानभाव से (-अज्ञानदशा में) रह रहा है;..** स्वयं अपने कारण से (वर्तता है)। **इससे यह निश्चित हुआ कि कर्म स्वयं ही बन्धस्वरूप है।** यह भावकर्म -पुण्य-पाप आदि यह सब बन्धस्वरूप है। **इसलिए, स्वयं बन्धस्वरूप होने से कर्म का निषेध किया गया है।** लो, विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)